बिनय सिन्हा

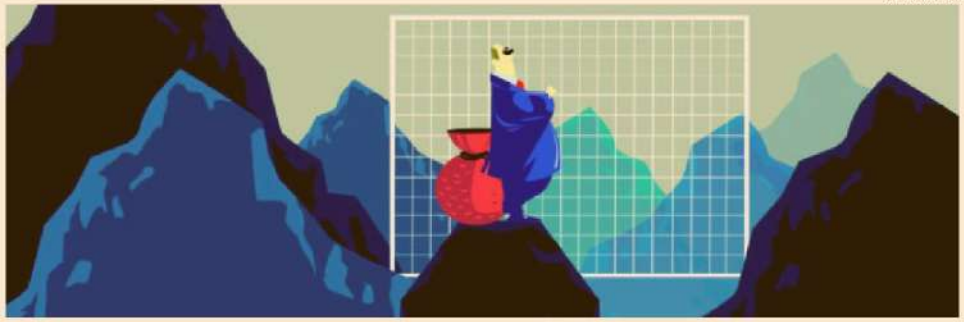

आजादी के अगले पड़ाव की प्रतीक्षा में वित्तीय क्षेत्र

वित्तीय क्षेत्र के कुछ हलकों में उदारवाद की बयार चली और उसने वृद्धि को भी रफ्तार दी। अब इस क्षेत्र में लंबित सुधारों को आगे बढ़ाकर उसे नई गति देने की दरकार है। बता रहे हैं केपी कृष्णन

बीते दिनों भारत ने अपनी स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ मनाई। यह अतीत के सिंहावलोकन और भविष्य की ओर निहारने का बढ़िया अवसर है। यदि विगत 75 वर्षों की बात करें तो आर्थिक नीति के क्षेत्र में उनमें से 44 साल अत्यंत दबाव वाली वित्तीय प्रणाली के नाम रहे। उदाहरण के रूप में 1947 का पूंजी निर्गम (नियंत्रण) अधिनियम प्रतिभूति बाजारों पर लागू कानून था। इस कानून के तहत सरकार ही निर्णय करती कि कोई कंपनी सार्वजनिक बाजार से कितनी राशि जुटा सकती है और उसके लिए किस माध्यम का उपयोग कर सकती है। उसके लिए समय निर्धारण भी सरकार ही करती। इतना ही नहीं, कौन व्यक्ति इन प्रतिभूतियों को खरीद सकेगा और कितनी कीमत पर खरीदेगा, इसका फैसला भी सरकार के हिस्से था।

समूचे वित्तीय तंत्र पर प्रतिबंधों के समूह और सार्वजनिक क्षेत्र स्वामित्व के माध्यम से राज्य का प्रभुत्व स्थापित किया गया। बैंकिंग पर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, बीमा पर भारतीय जीवन बीमा निगम/भारतीय साधारण बीमा निगम और म्युचुअल फंड्स यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के संरक्षण में थे। वित्तीय बाजारों की अधिकांश सामान्य गतिविधियों पर कानूनी बंदिशें थीं। उस समय आत्मनिर्भरता को लेकर कायम एक धारणा के चलते सीमा-पार सक्रियता मुख्य रूप से बंद थी। इस प्रकार देखा जाए तो किसी परियोजना से लेकर जोखिम उठाने की क्षमता के संदर्भ में घरेलू निवेश का पहलू घरेलू बचत के साथ ही जुड़ा था। पूरे परिदृश्य में बहुत कम आजादी थी।

कई मामलों में देखा जाए तो भारतीय समाजवाद का असल सुधार 1977 में आरंभ हुआ। वहीं वित्तीय आर्थिक नीति की बात करें तो उसमें आजादी 1990 के दशक के शुरुआती दौर में ही आई। सुधारों के संवाहकों ने व्यापक आर्थिक स्वतंत्रता, केंद्रीय योजना को घटाने और नियामकीय क्षमताएं बढ़ाने की दिशा में जोर दिया। इन सुधारों ने विगत तीन दशकों में क्षेत्र की वृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हमारे पास कई मोर्चों पर दर्शाने के लिए महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। सॉफ्टवेयर उद्योग जैसे उद्योगों को नए वित्तीय खिलाड़ियों ने सहारा दिया है। कार के एवज में ऋण या मकान के बदले ऋण, जिनका चलन एक समय काफी कम था, वह अब सामान्य बन गया है। घरेलू बचत और घरेलू निवेश के बीच का अंतर अब अमूमन कम खौफ पैदा करता है: हम विदेशी निवेश के बढ़ते भंडार की मदद से खातों का संतुलन साधने में सफल रहते हैं।

उपलब्धियों की बात करें तो इक्विटी बाजार में वित्त के पूरे इकोसिस्टम का उभार सबसे बड़ी उपलब्धि गिनी जाएगी। यह बाजार आरंभिक सार्वजनिक निर्गमों (आईपो) के समूचे तंत्र, जिसमें इक्विटी स्पॉट मार्केट, डेरिवेटिव ट्रेडिंग, अल्गोरिदमिक ट्रेडिंग, विदेशी निवेशकों के लिए वास्तविक परिवर्तनीयता, ट्रेडिंग और इंटरमीडिएशन में किसी बाधा का न होना और प्राइवेट इक्विटी तक ऐंजल निवेश से लेकर वेंचर कैपिटल तक की पहुंच से आईपीओ बाजार को मिले दम के जरिये फला-फूला। असल में इक्विटी बाजार उन निजी खिलाड़ियों का अखाड़ा है, जो अनुमान के आधार पर जोखिम लेते हैं और भारी मुनाफा कमाते या घाटा उठाते हैं। घरेलू इक्विटी बाजार की गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण विदेशी डेरिवेटिव बाजार के साथ सरोकार भी होता है, जो एक्सचेंज-ट्रेडेड और ओवर-द-काउंटर (यानी सीधी) ट्रेडिंग पहलुओं से लैस होता है।

यह परिवर्तन स्वयं ही साक्ष्यों के कई आयामों को दर्शाता है। वर्ष 1991-92 से 2019-20 के बीच गैर-वित्तीय बड़ी कंपनियों के लिए पूंजी स्रोत के रूप में इक्विटी की हिस्सेदारी 24 प्रतिशत से बढ़कर 37 प्रतिशत हो गई। वास्तव में कंपनियों ने वित्तपोषण के रूप में इक्विटी की हिस्सेदारी को बढ़ाकर आपूर्ति-पक्ष से जुड़े परिवर्तनों पर प्रतिक्रिया दी। सूचीबद्ध भारतीय कंपनियों के बाजार पूंजीकरण में तो और भी नाटकीय बढ़ोतरी हुई। वर्ष 1980 में इन सूचीबद्ध कंपनियों का बाजार पूंजीकरण भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का पांच प्रतिशत था। दस साल बाद 1990 में यह बढ़कर जीडीपी का 10 प्रतिशत हो गया और वर्तमान में लगभग जीडीपी का शत-प्रतिशत हो गया है। इक्विटी बाजार के कायाकल्प को भारत में वित्तीय सुधारों की सबसे बड़ी दास्तान कहा जा सकता है।

वहीं जब हम इक्विटी बाजार से परे समग्र परिदृश्य पर नजर डालते हैं तो काफी कुछ करने को शेष दिखता है। वृद्धि, स्थायित्व और समावेशन जैसे तीन पैमानों पर भारतीय वित्तीय क्षेत्र निरंतर मुश्किलों से दो-चार है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भुगतान प्रणालियों में कुछ सुधार प्रत्यक्ष दिखते हैं, लेकिन कुछ और पैमाने परेशान करते हैं। जैसे कि सामान्य परिवारों और सूक्ष्म, लघु एवं मझोले उपक्रमों की औपचारिक वित्त तक पहुंच। बीमा पहुंच और घनत्व। जीडीपी के अनुपात में पेंशन परिसंपत्तियां आदि। ये पहलू दर्शाते हैं कि भारत में बैंकिंग और बीमा सुविधाओं के साथ ही वृद्ध जनों के लिए आय सुरक्षा के अपर्याप्त इंतजाम हैं।

वित्तीय प्रणाली के बड़े हिस्से में कुछ आवश्यक तत्व नदारद रहे। आरंभिक वर्षों में यह वित्तीय अनुबंधों (किसी भी किस्म के डेरिवेटिव्स) के विभिन्न प्रकारों पर पूर्णतया प्रतिबंध, निजी क्षेत्र में प्रवेश बाधाओं (बीमा या बॉन्ड बाजार ट्रेडिंग) और सार्वजनिक क्षेत्र स्वामित्व को लेकर स्पष्ट दिखता था। ऐसी स्थितियां दूरगामी स्पेक्युलेटिव निर्णय लेने के लिहाज से प्रतिकूल थीं। हालांकि सरकारी स्वामित्व वाली कंपनियों का दबदबा घटा है और कई प्रतिस्पर्धी निजी कंपनियों वाले क्षेत्र उभरे हैं, लेकिन केंद्रीय योजना का दायरा और बढ़ा है, जहां उत्पादों और प्रक्रियाओं से जुड़े पहलुओं पर नियंत्रण होता है। कोई व्यक्ति भले ही एक वित्तीय फर्म का मालिक हो सकता है, लेकिन उस वित्तीय फर्म का काम और गतिविधियां असल में नियामक द्वारा नियंत्रित होती हैं। कई मामलों में तो इन वित्तीय फर्मों में शीर्ष पदों पर भूमिका-नियुक्तियों को लेकर भी नियंत्रण किया जाता है। केंद्रीय योजना, कानून का लचर राज और भारी दंड की आशंका एक प्रकार से अपनी पसंद के कारोबार या पेशे के चयन से वंचित रखने की हद तक है। इससे निजी कंपनियों में ऐसे निस्तेज कर्मियों का जमावड़ा हो जाता है, जो नियामकों की लिखित-अलिखित इच्छाओं के अधीन काम करते हैं। जब हम निजी स्वामित्व से इतर देखते हैं तो वस्तुतः राज्य के नियंत्रण वाला तंत्र दिखता है।

वित्तीय नियमन शरारती सार्वजनिक नीति समस्याओं में से एक है, जिसके समाधान के लिए राज्य की व्यापक क्षमताओं की आवश्यकता होगी। महाकुंभ मेले का आयोजन या कोविड टीकाकरण जैसी समस्याओं के लिए एकबारगी प्रयास करने होते हैं, जबकि वित्तीय नीतियों के लिए रोज ठोस कार्य आवश्यक हैं, जहां बड़ी संख्या में लेनदेन होते हैं और उसमें अग्रिम पंक्ति पर तैनात लोकसेवकों के पास उच्च विवेकाधीन शक्तियां होती हैं। यहां आम लोगों का बहुत कुछ दांव पर लगा होता है। वे राज्य के कामकाज को नया आकार देने में अपनी ऊर्जा लगाते हैं, जो उन्हें अनुकूल लगता है।

वास्तव में गहराई और तरलता से युक्त बाजार बनाने के लिए नियामकीय क्षमताओं का सृजन वाकई बहुत मुश्किल काम है, जिस पर विशेष हित हावी न हों और उसमें कंपनियां वित्तीय ग्राहकों के सर्वोत्तम हितों में काम करें।

वित्तीय सुधार के शुरुआती दशकों ने ऊहापोह के साथ ही वित्तीय क्षेत्र विधायी सुधार आयोग (एफएसएलआरसी) को दिशा दी। एफएसएलआरसी अनुशंसाओं के प्रमुख पहलुओं जैसे कि भारतीय रिजर्व बैंक में मुद्रास्फीति लक्षित करना और वायदा बाजार आयोग का भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड के साथ विलय को 2015 और 2016 में मूर्त रूप दिया गया। अब उसके शेष पहलुओं पर आगे बढ़कर वित्तीय क्षेत्र को नई आजादी देने की आवश्यकता है।

(लेखक पूर्व लोक सेवक, सीपीआर में मानद प्रोफेसर एवं कुछ लाभकारी एवं गैर-लाभकारी निदेशक मंडलों के सदस्य हैं)